SHODH CHETNA – YEAR-6 (OCT. TO DEC., 2020) VOL. 4
A Peer-Reviewed
International Referred &
Multifocal Research Journal

ISSN : 2350-0441
SJIF : 4.076

# संस्कृत साहित्य में नाटक का विकास

□ डॉ. आनन्दराम पैंकरा*

## शोध सारांश

इसमें सन्देह नहीं संस्कृतनाटकों के निर्माण की परम्परा अतिप्राचीन है. आदिकाल से भारतीय जन–जीवन के मनोरंजन के लिये नाटकों को सर्वश्रेष्ठ माध्यम माना जाता रहा है. आचार्य वामन ने साहित्य–विद्या के विभिन्न अवयवों में नाटक का प्रधान स्थान दिया है, क्योंकि कथा, आख्यायिका, काव्य, महाकाव्य आदि के पठन–पाठन से वास्तविक आनन्द की अनुभूति तभी सम्भव है, जब उसमें नाटकत्व का भी समावेश हो. अर्थात् कथा आख्यायिका के पात्र नाटक सजीव पात्र की तरह अभिनय करते हुये प्रतीत होने चाहिये तभी काव्य रस की सही अनुभूति सम्भव है।1 आचार्य अभिनव गुप्त की मान्यता है कि अभिनय काव्य की एक ऐसा काव्यांग है जिससे रंगमंच से वातावरण पात्रों के अभिनय वाचिक आहार्य एवं सात्वि चतुर्विध अनुभव एवं क्रिया व्यापार के द्वारा हृदयहीन सामाजिक को सहृदय सामाजिक की तरह अलौकिक आनन्द का रस प्राप्त कर लेता है।2

संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु धर्म ग्रंथों पुराणों अथवा काव्यों से लेकर उसे जनरुचि में ढालकर देश, काल और परिस्थितियों के आधार पर जनरंजन के दृष्टि से ऐसे नाटकों की योजना की, जो मनीषियों एवं सामान्य जनों के लिए समान उपयोगिता अर्जित करने में सक्षम थे, इस दृष्टि से एक काव्यकार की अपेक्षा एक नाटककार अधिक दायित्व अनुभव करता है यद्यपि दोनों कवि हैं, किन्तु कवि की भविष्य के प्रतिनिष्ठा अधिक रहती है और नाटककार की वर्तमान के प्रति।3

एक प्रश्न उठता है कि महाकाव्य उपन्यास तथा नाटक आदि सभी से सम्वादन होने पर भी नाटक को ही प्रधानता देने का क्या कारण है? इस प्रश्न के समाधान के लिए हमें गम्भीरता से विचार करना समीचीन प्रतीत होता है। किसी भी वस्तु का वर्णन प्रस्तुत करने के लिए गद्य–पद्य दोनों का उपयोग किया जा सकता है। कथानक वर्णन महाकाव्य के रूप में उपलब्ध होता है यह संस्कृति प्रधान ग्रंथ होता है, इसमें जीवन की समस्त परिस्थितियों का समीचीन रूप में विकदर्शन किया जा सकता है। रामायण और महाभारत हमारे संस्कृत वाङ्मय के उत्कृष्ट महाकाव्य है। दोनों में ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का तत्कालीन परिस्थितियों का सर्वांगीण विवरण किया गया है।

**काव्यं यशसेऽर्थ व्यवाहारविदे, शिवेतरक्षतये।**
**सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततपोपदेशयुजे।**

संस्कृत साहित्य की विकास–यात्रा पर विचार करते समय यह तथ्य सामने आता है कि नाटक के बीज वेदों में उपलब्ध होते हैं सभी नाटकीय तत्व

* सहायक प्राध्यापक संस्कृत शास. आर.बी.आर.एन.एम.एस. पी.जी. कालेज जशपुरनगर (छ.ग.)



Scanned with CamScanner

को वैदिक वाङ्मय में देखा जा सकता है जैसे– ऋग्वेद के सम्वाद सूक्तों में यम–यमी सम्वाद, उर्वशी–पुरूरवा सम्वाद, शर्मापणी सम्वाद, सामवेद में संगीत तत्व की सत्ता, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य विधान प्रभृति।

रामायण और महाभारत में रंगशाला, नट, कुशीलव आदि शब्दों के प्रयोग से भारतीय नाट्यकला की विकास यात्रा द्योतित होती है।

पाणिनी के 'पराभर्त्र शिलालिभ्या भिक्षुनटसूत्रयो' तथा 'कर्मन्द कृशाश्वादिनि' 4 सूत्र से सिद्ध होता है कि पाणिनी से पूर्व भी शिलाली और कृशाश्व दो आचार्य हो चुके थे, जिन्होंने नट–सूत्र अर्थात् नाट्य–शास्त्र का प्रवचन किया था, पतंजलि ने महाभाष्य5 में "कंसवध" और "बालिवध" नामक दो नाटकों का स्पष्ट उल्लेख किया है।

हरिवंश में भी रामायण की कथा के अभिनय का उल्लेख प्राप्त होता है, तथा बुद्ध देव ने अपने अनुशासन में नाट्याभिनय न करने का आदेश दिया है, इतिहास से ज्ञात होता है कि मगधराज ने नागराज का सम्मान करने के लिये नाटक का अभिनय कराया था, नाट्यशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख है कि वैवस्वत मनु के दूसरे युग अर्थात् त्रेता युग में लोग बहुत दुःखी थे तब उनके मनोरंजन के लिये इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने चारों वेदों से क्रमशः सम्वाद, संगीत, अभिनय और रस लेकर नाट्य वेद की रचना की, अग्नि पुराण में भी नाटक को धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थ की प्राप्ति कराने वाला कहा गया है–

**"त्रिवर्गसाधनं नाट्यम्"6**

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत नाटक का विकास क्रमशः हुआ। वेदों से, पुराणों से, लोकगीतों से, धार्मिक एवं सामूहिक उत्सवों से उसे सतत् प्रेरणा मिलती रही, और यह कला भारत में अपने चरम विकास पर तभी पहुँच चुकी थी, जब आज के सभ्य कहलाने वाले देश अन्धकार में निमग्न थे।

नाट्यवेद में केवल धर्मोन्मा या ज्ञानियों की ही चर्चा नहीं रहती या उसका निर्माण किसी विशिष्ट वर्ग के लिए नहीं किया गया है। अपितु कामुकों, दुर्विनीतों, क्लीवों आदि में क्रमशः धार्ष्ट्य, उत्साह आदि का समावेश रहता है।7

संस्कृत रूपक पाठक या दर्शक सहृदय के हृदयों में रस का संचार कर उनके आनन्दवर्द्धन एवं मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रखते, अपितु उनमें आचार्य भरत का मत है कि नाटक का अभिनय दुःख जगत् में अत्यधिक लाभदायक हो सकता है इस अपूर्व नाट्य साहित्य में कहीं धर्म है कहीं क्रीड़ा। राजनीति एवं अर्थनीति का भी समावेश है कहीं युद्ध कहीं काम, तो कहीं वध करुणीय निरूपण है।

**क्वचिद्धर्मः क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छमः।**
**क्वचिद्धास्यं क्वचिदयुद्धं क्वचित् कामः क्वचिद् वधः।।**

काव्य या नाटक का राज्य उसका सौन्दर्य हुआ करता है, यह सौन्दर्य बहिर्जगत तथा अन्तर्जगत दोनों में है। उसमें सदेह नहीं है। जो कवि केवल बाह्य जगत का वर्णन करते है, वह भी कवि है, किन्तु जो कवि मानव के अन्तस्तल का भी उत्कृष्ट रूप से वर्णन करते है उनका गणना महाकवि की श्रेणी में की जाती है। बाह्य–प्रकृति के माधुर्य की अनुभूति को मानकेतर प्राणी भी किया करते है। जैसे– पूर्णचन्द्र को देखकर चकोर आनन्दानुभूति करता है– मयूर मेघ का दर्शन कर के आनन्द विभोर नृत्य प्रवत्त हो जाता है। किन्तु मानव की दृष्टि में बाह्य सौन्दर्य केवल क्षणिक आनन्द ही नहीं देता अपितु मनुष्य के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर व्यापक प्रभाव डालता है। इसीलिए मानव में स्नेह, दया, भक्ति, कृतज्ञता आदि विविध भावों की उत्पत्ति हुआ करती है। संस्कृत नाटकों का वातावरण कुछ ऐसा ही कविसमय है, रसोन्मेष ही लक्ष्य होने के कारण संस्कृत का नाटककार बाह्यप्रकृति तथा मानव प्रकृति के प्रभावोत्पादक वर्णन करने में सदैव तत्पर रहता है। इस प्रकार संस्कृत के नाटकों में काव्य–सौन्दर्य की प्रचुरता ओत–प्रोत रही है।

संस्कृत नाटकों में असाधारण वचनविधि का विलास विलसित होता है नाटकों में संवादात्मक एवं असंवादात्मक उभयविध वचन विन्यास प्राप्त होते है तथा प्रश्नोत्तरात्मक संवादों की बहुलता और प्रधानता होती है। पात्रों की संवाद–भारती भी प्रेक्षक के मन में

Scanned with CamScanner

भावोत्कर्ष जनक बनती है। भरतमुनि ने भी वाणी को ही सबका कारक माना है।8 नाट्य का शरीर वाणी है इसलिए उसके प्रति सचेष्ट होना चाहिए उसी से वाक्यार्थ की अभिव्यजना होती है।9

यह नाट्यजगत की अद्भुत महिमा है, जहाँ कभी पात्र बनकर राजा बन जाता है रंगस्थ शिलाखण्ड भी गिरिराज तुल्य हो जाता है, और आज भी त्रेता, द्वापर, – युगोचित राम, कृष्ण के चरित प्रत्यक्ष से हो जाते हैं। विमुग्ध से प्रेक्षक असत्य को भी साधुबुद्धि से सोत्साह स्वीकार कर लेते हैं।

नाटक का इतिवृत्त प्रख्यात होना चाहिए उत्पाद्य या कवि कल्पित नहीं।10 उसका नायक कोई राजा, राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष हो सकता है। नाट्यशास्त्र में नायक के लिए "दिव्योश्रयोयेतम्" विशेषण का प्रयोग किया गया है। अभिनव गुप्त ने इसका अर्थ "दैवी पुरुष" किया। काव्यानुशासनकार ने अभिनव गुप्त के मत का खण्डन करते हुए लिखा है कि "दिव्योश्रयायेतम" से भरतमुनि का अभिप्राय "दैवी पुरुष" से नही था। उन्होने इसका प्रयोग "दैवी सहायता" के अर्थ में किया था नाट्य–दर्पणकार काव्यानुशासनकार के ही मत को मानते हैं, वस्तुतः यही अर्थ सही भी है।

मैक्समूलर का मत है कि वैदिक सम्वाद–सूक्त इन्द्र, मरुत तथा अन्य देवताओं की स्तुति में उनके अनुयायियों द्वारा गाये जाते थे। लेवी का कथन है कि सामवेद काल मे गान–कला अपने विकास की चरम–सीमा पर पहुँच चुकी थी। ऋग्वेद में ऐसी महिलाओं का उल्लेख है जो सुन्दर परिधान धारण कर नृत्य और गान द्वारा अपने प्रेमियों को आकृष्ट किया करती थी। ऋग्वेद मे मनुष्य के नाचने गाने के लिए भिन्न–भिन्न विधियों और प्रथाओं का वर्णन है। इन समस्त कलाओं के सवाद मे समाविष्ट होने के उपरान्त ही नाट्य साहित्य का जन्म हुआ होगा।

नृत्य और गान तथा रूपक में एक स्वाभाविक सम्बन्ध है जिसका बड़ी सरलता से अनुभव किया जा सकता है। इस समय यह कहना कठिन है कि वैदिक काल में उस नृत्य का मूल रूप क्या था। सम्भव है कि यज्ञ के अवसर पर ये नृत्य विधिवत प्रतिपादित किए जाते होंगे। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने जिस समय सृष्टि–रचना सम्पन्न की, उस समय भी एक दिव्य प्रकार के नृत्य का अभिनय हुआ। कुछ लोगों अनुमान है कि इसी नृत्य की कल्पना कर कालान्तर मे उसका रूपक में समावेश किया गया होगा, यद्यपि इस विषय मे कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है। सृष्टि के आरम्भ मे यूनान देश मे भी लोग परमेश्वर की रचयित्री शक्ति की प्रशसा कर उस पर मुग्ध होकर नाचने लगते थे। इसी प्रकार के नृत्यों का कोई उल्लेख नहीं मिला है। अत यह मत अनुचित ही प्रतीत होता है।

डॉ0 "हर्टल" का मत है कि वैदिक ऋचाएं सदा से ही गायी जाती थी। एक गाने वाले के लिए दो पक्षों का संवाद प्रस्तुत करना सम्भव नही है। अत सम्भव है कि ऐसे सूक्तों को नाटकीय रूप प्रदान करने के उद्देश्य से यह दो गायकों का गान होता हो इस कला का अवशेष जयदेवकृत गीतगोविन्द मे कुछ परिवर्तित रूप मे मिलता है। वैदिक सवाद–सूक्तों के विकसित रूप मे परिवर्तित होने मे राज–यात्राओं के अवसर पर किये गये उत्सवों का विशेष भाग है। विष्णु, कृष्ण, रुद्र, शिव की पूजा वैदिक काल से प्रचलित है। इन पूजाओं का भी नाट्य साहित्य के विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

भारतीय विद्वानों की धारणा है कि यज्ञीय अवसरों को सुमनोहर बनाने के लिए ही नाटक साहित्य का जन्म हुआ। गद्य–पद्य के सम्मिश्रित प्रयोग के उद्गम के विषय में मतभेद है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि इसका कारण यह हो सकता है कि इन वैदिक नाटकों की आरम्भिक अवस्था में गद्य न हो और कुछ समय पश्चात उनको नाटकीय दृष्टि से उपयुक्त बनाने के लिए गद्य का समावेश किया गया हो, जो कि इन सूक्तों के नाटकीय महत्व के लुप्त होने के साथ–साथ विलुप्त हो गया हो। प्रमाणाभाव के कारण इस विषय में भी किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुचा जा सकता जब वेदों मे किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नही है तो कोई इस प्रकार का कोई ही उपस्थित नही होता।

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार इन सवाद–सूक्तों के रूपों पर विवेचना करने के उपरान्त एक सहज प्रश्न

Scanned with CamScanner

उपस्थित होता है कि सम्वाद केवल ऋग्वेद मे ही नहीं अपितु ब्राह्मण, आरण्य, उपनिषद् जैसे उत्तरकालीन वैदिक साहित्य मे एवं पुराण, रामायण, तथा महाभारत आदि महाकाव्यो मे प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है फिर ऋग्वेद को ही नाटक साहित्य का प्राथमिक रुप क्यों माना जावे। कालचक्र के अनुसार ऋग्वेद हमारे साहित्य का प्राचीनतम रूप है केवल सम्वाद का नाटक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि – उसकी विद्यमानता मे भी अभिनय सम्बन्धी क्रियाकलापो के अभाव मे नाटक की कल्पना करना सम्भव नहीं है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने स्वीकार किया है कि नाट्य साहित्य मे सम्वाद समाविष्ट करने का मूल स्रोत ऋग्वेद ही है, जिसके आधार पर पश्चादवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रणाली का श्री गणेश किया। अतः हम इन सूक्तों को नाटक न मानते हुऐ यह स्वीकार करते हैं कि नाटकीय सम्वाद के मूल स्रोत के रुप में उनको इस साहित्य विशेष का प्राचीनतम आकार अवश्य कहा जा सकता है। अपेक्षाकृत नवीन साहित्य जिसमें ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद इत्यादि का समावेश है, केवल दार्शनिक वार्तालाप तक सीमित है और बाद मे कभी उनकी सहायता से इस प्रकार की नाट्य प्रवृत्ति नही मिली।

## संदर्भ स्रोत :–


1. काव्यालकार सूत्र– 1–3–30–32
2. अभिनव भारती पृ 282–283–288
3. इन्द्रो दु
4. काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास– 4–3–111
5. महाभाष्य– 3–2–111
6. अग्निपुराण– 338–7
7. क्लीवाना धृष्टर्यजननमुत्साह शूरमानिनाम।
8. अबोधाना विबोधश्च वेदग्ध्य विदुषामि।।

(नाट्यशास्त्र– 1–110)

9. वागहि सर्वस्य कारणम ना0शा0 14.3
10. वाचि यत्नस्तु कर्तव्या नाट्यस्यय तनु स्मृता।
11. अङ्गनेपथ्यसत्यानि वक्त्राणि व्यञ्जयन्तिहि।।

ना0शा0

12. नाटक ख्यातवृत्त स्यात– (सा0द0 6 परि


Scanned with CamScanner